International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 5; May 2017; Page No. 389-390

निरुक्त में भाषा का स्वरूप

डॉ. सुमन रानी

LECT. Sanskrit, G.S.S.S. Suketri, Panchkula, Haryana, India

प्रस्तावना

यास्क के निरुक्त का उद्देश्य वेदार्थ परिज्ञान को सुगम बनाना है। वेद का आविर्भाव वाणी के रूप में हुआ और वाक् का सुसंगत रूप भाषा ही होता है। जो कुछ भी कह देना भाषा नहीं है। वेद वाक् के स्वरूप को स्पष्ट करता हुआ कहता है–

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोअस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश।। (ऋ० 4. 58.3)

उक्त मन्त्र में वाणी के बाह्य रूप को स्पष्ट कर देने के साथ–साथ उसकी उच्चारण प्रक्रिया को भी रेखांकित किया गया है।

भाषा की उपयोगिता लोक व्यवहार के लिए

मानव समाज के लिए भाषा की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं– व्यवहारार्थं लोके[1] कि लोक में व्यवहार के लिए भाषा की आवश्यकता है। अन्य अक्षिनिकोच, हस्त संकेत आदि क्या इस कार्य को नहीं कर सकते? इस प्रश्न का समाधान करता हुए यास्त करते हैं–

अणु होने के कारण संकेत के लिए शब्द का प्रयोग

'अणीयस्त्वाच्च शब्देन संज्ञाकरणम्'[2] कि अणु होने के कारण शब्द से संज्ञा अर्थात् संकेत किया जाता है।

यह सत्य है कि अक्षिनिकोच आदि अभिनय व्यापक हैं, पर वे उतने सूक्ष्म नहीं हैं। इसके अतिरिक्त उनके भावाभिव्यक्ति करने में अत्यधिक प्रयास करना पड़ता है फिर भी निःसंदिग्ध रूप से उनसे अर्थ की व्याप्ति नहीं होती अर्थात् उनके द्वारा अर्थ व्यक्त करने पर संदेह बना ही रहता है जबकि नाममात्र के प्रयत्न से उच्चारितहोकर शब्द अपरिमित अर्थ से श्रोता को व्याप्त कर लेता है। अतः लोकव्यवहार में, सूक्ष्म होने के कारण शब्द से ही वस्तुओं का नामकरण किया जाता है।[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि 'अणु' शब्द यहाँ केवल प्रयास की अणुता को परिलक्षित करने के लिए नहीं आया, अपितु वह सम्पूर्ण शब्द प्रक्रिया की सूक्ष्मता को स्पष्ट करता है। शब्द इतना सूक्ष्म है कि वह हृदय के केमलतम प्रदेश में विद्यमान भावों को धागे के समान व्याप्त कर लेता है, जिस प्रकार सूत्र में ग्रथित हुए विना पुष्प, माला नहीं बन सकते, उसी प्रकार शब्द में ग्रथित हुए विना भाव दूसरों के द्वारा ग्राह्य नहीं हो सकते।

अन्य सभी अक्षिनिकोच, हस्तसङ्केत आदि माध्यम सूक्ष्म भाव तो बहुत दूर, स्थूल भावों को भी असंदिग्ध रूप में व्यक्त करने में सक्षम नहीं हैं। जिस समय मानव को एक–दूसरे का हाथ दिखाई नहीं पड़ता, ऐसे गहन अंधकार के समय शब्द ही एक ऐसा माध्यम है, जो एक के अर्थ को दूसरे तक पहुँचाता है।

शब्द के अभाव में समग्र कल्पना उसी प्रकार सुप्त पड़ी रहती, जैसे हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखरों का हिम। भाव तक पहुँचने की सामर्थ्य और किसी में है भी नहीं, क्योंकि भावाभिव्यक्ति की प्रक्रिया का मार्ग इतना सूक्ष्म है कि अन्य साधन वहां पहुंच भी नहीं सकते। शब्द व्यापक भी है और सूक्ष्म भी तथा उसके व्यक्त करने में कोई विशेष आया सभी नहीं करना पड़ता। यही कारण है कि व्यवहार में मानव शब्द से नामकरण करता है।

शब्द के कारण शास्त्र अध्ययन का श्रम

जहां तक इस आरोप का प्रश्न है कि पदचतुष्टय रूप वाक् व्यवहार को स्वीकार करने में इतरेतरोपदेश, शास्त्रकृतयोग आदि समस्याएं उत्पन्न होती हैं तथा दुरूह वेदादि शास्त्रों के अध्ययन करने का कष्ट उठाना पड़ता है, उसका समाधान करते हुए दुर्ग कहते हैं कि वेद का अध्ययन समाज अपने अभ्युदय के लिए करता है, जो अपना अभ्युदय नहीं चाहता है, उसके लिए शब्द को जानते हुए भी वेद पढ़ना आवश्यक नहीं है।[4]

आचार्य स्कन्द स्वामी के अनुसार उक्त प्रकरण की संगति

आचार्य स्कन्द स्वामी उपर्युक्त प्रकरण की सङ्गति कुछ भिन्न प्रकार से करते हैं। उनके अनुसार वाक्य 'व्याप्तिमत्त्वात्तु शब्दस्य' पर समाप्त न होकर 'अणियस्त्वाच्च' पर जाकर समाप्त होता है।

व्यापक होने पर भी शब्द की अनुपलब्धि में प्रथम कारण

स्कन्द मानते हैं कि शब्द की नित्यता के सम्बन्ध में की जाने वाली आपत्तियों का समाधान दो हेतुओं से हो जाता है। शब्द की उपलब्धि न होने पर यह आशङ्का जन्म ले सकती है कि क्या शब्द अनित्य है? इसका परिहार करने के लिए कहा गया है कि *शब्द* व्यापक और आकृति के समानसर्वगतहै।[5]

जिस प्रकार गौ के उपरत हो जाने पर आकृति समाप्त नहीं होती है, उसके दर्शन दूसरी गायों के शरीरों में हो जाते हैं, उसी प्रकार शब्द की प्रतीति हो जाती है, क्योंकि वह व्यापक और सर्वगत भी है।[6]

व्यापक होने पर भी शब्द की अनुपलब्धि में द्वितीय कारण

यदि शब्द सर्वत्र व्याप्त है, तो उसकी उपलब्धि क्यों नहीं होती? उत्तर देते हुए आचार्य स्कन्द स्वामी कहते हैं कि *आकाश अणु (सूक्ष्म) है, इसलिए आकाश का गुण होने के कारण शब्द अत्यन्त सूक्ष्म है*, अतः वह सत् होते हुए भी उपलब्ध नहीं होता। जिस प्रकार प्रकाश में रूप की उपलब्धि होती है, उसी प्रकार ताल्वादि व्यापार के सहायक होने पर शब्द श्रोत्र का विषय होता है। इसलिए आत्मा तथा आकाश के समान धर्म वाला, उत्पत्ति तथा विनाश धर्म से रहित यह शब्द निश्चित उपाय करने पर प्राप्त होता है।[7]

व्यापक होने पर भी शब्द की अप्रतीति में कारण

शब्द के व्यापक होने पर भी प्रतीति क्यों नहीं होती? इस प्रश्न के सन्दर्भ में स्कन्द 'अणीयस्त्वाच्च'को प्रस्तुत करते हैं। यह सही है कि उपर्युक्त अर्थ के साथ 'अणीयस्त्वाच्च' की सङ्गति बैठ जाती है, पर

यह प्रश्न भाषा की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है।जिस सन्दर्भ में दुर्ग देख रहे हैं, वह कहीं अधिक उचित प्रतीत होता है।

संज्ञा पद का अर्थ

'शब्देन संज्ञाकरणं व्यवहारार्थं लोके'[8] यास्क के उक्त कथन में उद्धृत 'संज्ञा' पद का अर्थ आचार्य स्कन्द स्वामी वाक्यार्थ भी ग्रहण करते हैं–'संहितैर्नामादिपदैर्ज्ञायते येन वाक्यार्थः इति वाक्यमेव संज्ञाशब्देनोच्यते।'[9] परन्तु दुर्ग 'संज्ञा' का सामान्य अर्थ (नामकरण) ग्रहण कर रहे हैं। स्कन्द की अन्विति वास्तव में युक्ति सङ्गत है, क्योंकि् यवहार केवल नामपदों के द्वारा नहीं हो सकता, उसके लिए आख्यात, उपसर्ग आदि पद भी अपेक्षित होते हैं।

संज्ञा पद का एक तीसरा अर्थ भी है, उसके अनुसार प्रस्तुत स्थल पर संज्ञा शब्द संकेत अर्थ का अभिधायक है। काव्यशास्त्र में अभिधा का विवेचन करते हुए कहा गया है– 'साक्षात् संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचकः' (काव्यप्रकाश 2.7)। यहां पर जिस अर्थ में संकेतित का प्रयोग हो रहा है, उसी अर्थ में यहां संज्ञा शब्द प्रयुक्त दिखाई देता है। तदनुसार पंक्ति का अर्थ होगा–लोक में व्यवहार के लिए में शब्द के द्वारा संज्ञाकरण=संकेतकरण है।

संदर्भ :

1. निरु. 1.2
2. वही
3. दुर्ग, निरुक्तवृत्ति, पृ. 24
4. वही, पृ. 25
5. स्कन्द, निरुक्तवृत्ति, भा. 1, पृ. 26–27
6. वही
7. वही, पृ. 27
8. निरु. 1.2
9. स्कन्द, निरुक्तवृत्ति, भा. 1, पृ. 27